

दिल्ली उच्च न्यायालय : नई दिल्ली

निर्णय सुरक्षित: 19 फरवरी, 2014

निर्णय उद्घोषित: 13 मार्च, 2014

मू.वि.या. 132/2014

भरत लाल मौर्या

..... याचिकाकर्ता

द्वारा: सुश्री स्नेह लता श्रीवास्तव,
अधिवक्ता

बनाम

मैसर्स गोदरेज एंड बॉयस मैन्युफैक्चरिंग कंपनी लिमिटेड प्रत्यर्थी

द्वारा: श्री विकास तिवारी, अधिवक्ता के
साथ श्री राजी अब्राहम, प्रत्यर्थी के
अधिकृत प्रतिनिधि (ए.आर.)

मू.वि.या. 133/2014

मैसर्स सेंगुइन एंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड

..... याचिकाकर्ता

द्वारा: सुश्री स्नेह लता श्रीवास्तव,
अधिवक्ता

बनाम

मैसर्स गोदरेज एंड बॉयस मैन्युफैक्चरिंग कंपनी लिमिटेड प्रत्यर्थी

द्वारा: श्री विकास तिवारी, अधिवक्ता के
साथ श्री राजी अब्राहम, प्रत्यर्थी के
अधिकृत प्रतिनिधि (ए.आर.)

कोरम:

माननीय न्यायमूर्ति श्री संजीव सचदेवा

न्या. संजीव सचदेवा,

1. मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 (जिसे इसके बाद अधिनियम कहा जाएगा) की धारा 34 के तहत ये याचिकाएँ 04.10.2013 को जारी किए गए दो अलग-अलग लेकिन एकसमान मध्यस्थता अधिनिर्णयों पर आपत्तियाँ हैं। चूँकि अधिनिर्णय और तथ्य एकसमान हैं, इसलिए आपत्तियों का निपटान एक ही निर्णय द्वारा किया जा रहा है।
2. विवाद प्रत्यर्थी द्वारा किराए पर लिए गए दो अलग-अलग परिसरों से संबंधित हैं। किराए पर देने की निबंधन और शर्तें एकसमान हैं, एकसमान अभिवाक दिए गए और पक्षकारगण द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत किए गए और दोनों याचिकाओं पर एक साथ बहस की गई।
3. पार्श्वनाथ आर्केडिया कॉम्प्लेक्स, 1, गुड़गांव महरौली रोड, सेक्टर 14 गुड़गांव के पास स्थित दो किराएदार परिसर दुकान/स्थान संख्या जी-03

(मू.वि.या संख्या 132/2014 में) और दुकान/स्थान संख्या जी-02 (मू.वि.या संख्या 133/2014 में) को प्रत्यर्थी द्वारा मैसर्स पार्श्वनाथ डेवलपर्स लिमिटेड से 12 वर्ष की अवधि के लिए 16.02.2007 को पट्टे पर लिया गया था।

4. मैसर्स पार्श्वनाथ डेवलपर्स लिमिटेड और प्रत्यर्थी के बीच दिनांक 16.02.2007 को पट्टा अनुबंध निष्पादित किया गया था। उक्त पट्टा अनुबंध में निर्धारित किया गया था कि पट्टे की अवधि 12 वर्ष की होगी और आरंभिक मासिक किराया 1,24,000/- रुपये होगा। पट्टा अनुबंध 100/- रुपये के स्टाम्प पेपर पर निष्पादित किया गया था और अरजिस्ट्रीकृत था।
5. प्रत्यर्थी को किरायेदारी पर देने के बाद, संबंधित स्थानों को मैसर्स पार्श्वनाथ डेवलपर्स लिमिटेड द्वारा याचीगण/आपत्तिकर्ताओं को बेच दिया गया था। याचीगण द्वारा उक्त स्थानों को खरीदने के बाद, प्रत्यर्थी ने याचीगण के पक्ष में अपनी किरायेदारी को अभिधारी कर दिया।
6. याचीगण के अनुसार, पट्टा अनुबंध में यह भी निर्धारित किया गया था कि 16.04.2007 से 15.04.2010 तक 36 महीने की समयबंदी होगी, जिसमें कोई भी पक्षकार अनुबंध को समाप्त नहीं कर सकता। याचीगण के अनुसार, प्रत्यर्थी ने पट्टा अनुबंध की शर्तों का उल्लंघन करते हुए 20.01.2009 के पत्र द्वारा पट्टा अनुबंध को समाप्त कर दिया, केवल

31.01.2009 तक का किराया दिया और 30.03.2009 को दुकानें खाली दीं। याचीगण ने प्रत्यर्थीगण से 2009 के फरवरी और मार्च महीने के लिए और समयबंदी की अवधि के लिए भी किराए की मांग की। याचीगण ने आगे तर्क दिया कि प्रत्यर्थी ने कभी भी याचीगण को दुकानों का भौतिक कब्ज़ा नहीं सौंपा और दुकानों में लगी हुई साज-सज्जा और स्थावर सामानों को हटाने में विफल रहा।

7. याचीगण ने प्रत्यर्थी के विरुद्ध अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, साकेत न्यायालय में 01.08.2011 को वसूली के लिए वाद दायर किया। उक्त वाद का निपटान इस निर्देश के साथ किया गया कि पक्षकारगण को विवाद का निपटान मध्यस्थता के द्वारा करना चाहिए। वर्तमान मध्यस्थ अधिकरण का गठन इस न्यायालय द्वारा अधिनियम की धारा 11 के तहत किया गया था। मध्यस्थ अधिकरण ने 04.10.2013 को अधिनिर्णय प्रकाशित किया, जिसको आक्षेपित किया गया।
8. मध्यस्थ अधिकरण के समक्ष याचीगण ने 2009 के फरवरी और मार्च महीने के किराए का दावा किया और 01.04.2009 से 15.04.2010 तक के शेष समयबंदी के लिए भी किराए का दावा किया।
9. प्रत्यर्थी ने याचीगण के दावे का इस आधार पर विरोध किया कि प्रत्यर्थी ने 30.03.2009 को याचीगण को दो महीने का नोटिस देने के बाद परिसर खाली कर दिया था और इस तरह, परिसर खाली करने के बाद

किराया देने का उनका दायित्व समाप्त हो गया। इसके अलावा, समयबंदी के संबंध में, प्रत्यर्थी ने बचाव में कहा कि पट्टा अनुबंध पर न तो विधिवत मुहर लगी थी और न ही वे रजिस्ट्रीकृत थे और इस तरह, पट्टा अनुबंध की कोई भी शर्त लागू नहीं की जा सकती। प्रत्यर्थी ने यह भी अभिवाक दिया कि चूंकि पट्टा अनुबंध रजिस्ट्रीकृत नहीं थे, इसलिए किरायेदारी महीने-दर-महीने की थी जिसे 15 दिनों के नोटिस पर समाप्त किया जा सकता था और पट्टा अनुबंध के किसी भी खंड पर भरोसा नहीं किया जा सकता था या उसे लागू नहीं किया जा सकता था। प्रत्यर्थी ने प्रतिभूति जमा के समायोजन का भी दावा किया जो याचीगण द्वारा स्वीकार की गई थी।

10. मध्यस्थ अधिकरण द्वारा निम्नलिखित मुद्दे विरचित किए गए थे:

- “1) क्या दावेदार के पास वर्तमान दावा याचिका दायर करने का कोई अधिकार नहीं है? यह साबित करने का भार प्रत्यर्थी पर है।
- 2) क्या दावा याचिका समय-वर्जित है जैसा कि दावे के कथन के उत्तर के प्रारंभिक आपत्तियों के पैरा 2 में आरोप लगाया गया है? यह सिद्ध करने का भार प्रत्यर्थी पर है।
- 3) क्या दावा याचिका भारतीय रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 49 सहपठित धारा 17(1)(घ) के अंतर्गत आती है और भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 के अंतर्गत भी

आती है। यदि हाँ, तो इसका प्रभाव क्या होगा? यह सिद्ध करने का भार प्रत्यर्थी पर है।

इस मुद्दे संख्या 3 को दिनांक 15-07-2013 को पक्षकारगण की सहमति से निम्नानुसार संशोधित किया गया:

क्या दिनांक 16-02-2007 का पट्टा विलेख भारतीय रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 49 सहपठित धारा 17(1)(घ) के अंतर्गत आता है और भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 के अंतर्गत भी आता है। यदि ऐसा है, तो इसका प्रभाव क्या होगा? यह सिद्ध करने का भार प्रत्यर्थी पर है।

- 4) क्या दावेदार वाद परिसर का मालिक है? यह सिद्ध करने का भार दावेदार पर है।
- 5) दावेदार प्रत्यर्थी से कितनी राशि की, यदि कोई हो, तो वसूली का हकदार है? यह सिद्ध करने का भार दावेदार पर है।
- 6) यदि कोई हो, तो दावेदार ब्याज की किस दर, का हकदार है और यदि है, तो कितनी अवधि के लिए और कितनी राशि पर?
- 7) राहत”

11. मध्यस्थ अधिकरण ने साक्ष्यों और मुद्दा संख्या 1 और 4 पर पक्षकारगण की साक्ष्य और प्रस्तुतियों पर विचार करने के बाद यह

निष्कर्ष निकाला कि याचिकाकर्ता वाद परिसर के मालिक और मकान मालिक थे और इस तरह, वे दावा याचिका को बनाए रखने के हकदार थे। इस निष्कर्ष पर प्रतिवादी द्वारा कोई आपत्ति नहीं की गई है। परिसीमा से संबंधित मुद्दा संख्या 2 पर, मध्यस्थ अधिकरण ने यह निष्कर्ष निकाला है कि चूंकि परिसर 01.04.2009 को खाली कर दिया गया था, इसलिए वसूली के लिए वाद, जिसमें पक्षकारगण को मध्यस्थता के लिए भेजा गया था, परिसीमा के भीतर 15.04.2010 को दायर किया गया था। इस निष्कर्ष पर प्रत्यर्थी द्वारा आपत्ति नहीं की गई है। प्रत्यर्थी ने अधिनिर्णयों पर आपत्ति नहीं की है।

12. मुद्दा संख्या 3 के संबंध में, अर्थात्, प्रत्यर्थी की आपत्ति से संबंधित मुद्दा कि याचिकाकर्ता का अनवसित समयबंदी के भुगतान का दावा भारतीय स्टाम्प अधिनियम और भारतीय रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के प्रावधानों से प्रभावित था, मध्यस्थ अधिकरण ने माना है कि पट्टा विलेख पर अपर्याप्त रूप से स्टाम्प लगा हुआ था और इसे अनिवार्य रूप से रजिस्ट्रीकरण की आवश्यकता थी और चूंकि यह अरजिस्ट्रीकृत था, इसलिए यह साक्ष्य में अस्वीकार्य था और समयबंदी खंड को लागू नहीं किया जा सकता था।

13. के.बी. साहा एंड संस प्राइवेट लिमिटेड बनाम डेवलपमेंट कंसल्टेंट लिमिटेड 2008 (8) एस.सी.सी. 564 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार निर्धारित किए हैं:

“21. इस न्यायालय और उच्च न्यायालयों के विभिन्न निर्णयों में निर्धारित सिद्धांतों से, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, यह स्पष्ट है कि:

1. रजिस्ट्रीकृत होने के लिए आवश्यक दस्तावेज, यदि अरजिस्ट्रीकृत है तो रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 49 के तहत साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य नहीं है।
2. हालांकि, ऐसे अरजिस्ट्रीकृत दस्तावेज को रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 49 के प्रावधान के अनुसार संपार्श्विक उद्देश्य के साक्ष्य के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।
3. संपार्श्विक लेन-देन उस लेन-देन से स्वतंत्र या विभाज्य होना चाहिए जिसके लिए विधि के तहत रजिस्ट्रीकरण की आवश्यकता होती है।
4. संपार्श्विक लेन-देन ऐसा लेन-देन होना चाहिए जिसके लिए स्वयं किसी रजिस्ट्रीकृत दस्तावेज की आवश्यकता न हो, अर्थात् ऐसा लेन-देन जो एक सौ रुपये या उससे अधिक मूल्य की अचल संपत्ति में कोई अधिकार, स्वामित्व या हित आदि बनाता हो।

5. यदि कोई दस्तावेज रजिस्ट्रीकरण के अभाव में साक्ष्य में अस्वीकार्य है, तो उसकी कोई भी शर्त साक्ष्य में स्वीकार नहीं की जा सकती और किसी महत्वपूर्ण खंड को साबित करने के उद्देश्य से दस्तावेज का उपयोग करना, संपार्श्विक उद्देश्य के रूप में उपयोग करना नहीं होगा।”
14. ऐसा दस्तावेज जिसे अनिवार्य रूप से रजिस्ट्रीकृत होना आवश्यक है और रजिस्ट्रीकृत नहीं है, साक्ष्य में अस्वीकार्य है। ऐसा दस्तावेज जिसे अनिवार्य रूप से रजिस्ट्रीकृत होना आवश्यक है लेकिन रजिस्ट्रीकृत नहीं होने पर किसी भी संपार्श्विक उद्देश्य को छोड़कर साक्ष्य के रूप में उपयोग नहीं किया जा सकता है। संपार्श्विक लेन-देन उस लेन-देन से स्वतंत्र और विभाज्य होना चाहिए जिसके लिए विधि के अनुसार पंजीकरण आवश्यक है। संपार्श्विक लेन-देन ऐसा लेन-देन होना चाहिए जो रजिस्ट्रीकृत लेनदेन द्वारा प्रभावी होने के लिए अपेक्षित न हो। मकान मालिक-किरायेदार से संबंधित लेनदेन में संपार्श्विक लेनदेन के कुछ उदाहरण पक्षकारगण के बीच का संबंध, परिसर की प्रकृति, किराए का उद्देश्य, किराए की दर होंगे। अरजिस्ट्रीकृत पट्टा विलेख को उपरोक्त संपार्श्विक उद्देश्यों में से किसी का पता भी लगाने के लिए देखा जा सकता है, लेकिन पट्टे की अवधि को लागू करने के लिए नहीं।
15. पट्टा विलेख में पट्टे की अवधि या समयबंदी की निश्चित अवधि तय करने वाला खंड संपार्श्विक उद्देश्य नहीं है। उक्त खंड पट्टा के मुख्य

खंडों में से एक होगा जो रजिस्ट्रीकरण के अभाव में साक्ष्य में अस्वीकार्य होगा और विधि में लागू नहीं हो सकता है। मध्यस्थ अधिकरण ने उचित रूप से अभिनिर्धारित किया है कि समयबंदी से संबंधित खंड को संपार्श्विक उद्देश्य नहीं कहा जा सकता है और पक्षकारगण के बीच किरायेदारी एक निश्चित अवधि की किरायेदारी नहीं थी बल्कि महीने-के-महीने की किरायेदारी थी जिसे किसी भी पक्षकार द्वारा नोटिस देकर समाप्त किया जा सकता था।

16. मध्यस्थ अधिकरण ने आगे उचित रूप से अभिनिर्धारित किया कि दस्तावेज़ पर अपर्याप्त रूप से मुहर लगी हुई थी और इस तरह, साक्ष्य में अस्वीकार्य है। यदि दस्तावेज़ पर विधिवत स्टाम्प नहीं लगा हुआ पाया जाता है, तो स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 उक्त दस्तावेज़ पर कार्रवाई करने पर रोक लगाती है। **(एसएमएस टी एस्टेट्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम चांदमारी टी कंपनी प्राइवेट लिमिटेड 2011 (14) एस.सी.सी. 66)।**

17. मध्यस्थ अधिकरण का यह निष्कर्ष कि पट्टा समझौते के लिए अनिवार्य रूप से रजिस्ट्रीकरण की आवश्यकता थी और रजिस्ट्रीकरण के अभाव में तथा अपर्याप्त रूप से स्टाम्प किए जाने के कारण साक्ष्य में अस्वीकार्य तथा लागू नहीं किया जा सकता था, तथा इसके अतिरिक्त यह कि समयबंदी निर्धारित करने वाला खंड पट्टे का मुख्य खंड था

तथा रजिस्ट्रीकरण के अभाव में उस पर न तो भरोसा किया जा सकता था और न ही उसे लागू किया जा सकता था, गलत नहीं ठहराया जा सकता।

18. मध्यस्थ अधिकरण ने पक्षकारगण के साक्ष्य के मूल्यांकन के आधार पर यह तथ्य पाया कि प्रत्यर्थी द्वारा दिनांक 20.01.2009 के विधिक नोटिस द्वारा किरायेदारी समाप्त कर दी गई थी, जिस नोटिस में प्रत्यर्थी द्वारा 01.04.2009 से परिसर खाली करने के इरादे की भी सूचना दी गई थी। मध्यस्थ अधिकरण ने आगे यह तथ्य भी पाया कि परिसर 01.04.2009 से खाली कर दिया गया था। मध्यस्थ अधिकरण ने प्रत्यर्थी को सेवा कर और रखरखाव शुल्क के अलावा 1,24,000/- रुपये की सहमत दर पर 2009 के फरवरी और मार्च महीनों के लिए किराया देने के लिए उत्तरदायी ठहराया है।
19. मध्यस्थ अधिकरण ने अभिनिर्धारित किया है कि प्रत्यर्थी याचीगण द्वारा देय राशि के समायोजन के बाद सुरक्षा जमा की शेष राशि के साथ-साथ 18% प्रति वर्ष ब्याज पाने का हकदार है।
20. याचीगण ने मध्यस्थ अधिकरण द्वारा तथ्यों संबंधी निष्कर्षों पर आक्षेपण किया है।

21. याचीगण द्वारा दायर दावा याचिका के अवलोकन से पता चलता है कि याचीगण ने दो शीर्ष के अंतर्गत किराए का दावा किया था, 2009 के फरवरी और मार्च महीने का किराया और 01.04.2009 से 15.04.2009 तक के समयबंदी का अलग से किराया। याचीगण द्वारा यह पृथक्करण इस तथ्य का संकेत है कि याचिकाकर्ता स्वयं दोनों अवधियों को अलग-अलग मान रहे थे। उक्त दोनों अवधियों का किराया एक ही था और इस प्रकार उक्त दोनों अवधियों को अलग-अलग दिखाने का एकमात्र उद्देश्य यह तथ्य प्रतीत होता है कि याचीगण को पता था कि 01.04.2009 को परिसर खाली कर दिया गया था। इसके अलावा, याचीगण की ओर से 27.04.2009 को जारी किए गए विधिक नोटिस (प्र.शि.सा.1/10) में, याचीगण ने स्वयं स्वीकार किया है कि प्रत्यर्थी ने 30.03.2009 को परिसर खाली कर दिया था। हालांकि, उन्होंने भौतिक कब्जे को सौंपने पर विवाद किया है। मध्यस्थ अधिकरण का निष्कर्ष यह है कि प्रत्यर्थी ने 01.04.2009 से परिसर खाली कर दिया था। यह निष्कर्ष पूरी तरह से तथ्यात्मक है।
22. अधिनियम की धारा 34 के तहत आपत्तियों पर निर्णय करते समय न्यायालय द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्तियाँ अपीलीय शक्तियाँ नहीं हैं। न्यायालय अपील न्यायालय के रूप में नहीं बैठता है। यदि मध्यस्थ अधिकरण ने कोई उचित दृष्टिकोण अपनाया है, तो न्यायालय धारा 34

के तहत आपत्तियों पर विचार करते समय मध्यस्थ अधिकरण के दृष्टिकोण के स्थान पर अपना दृष्टिकोण नहीं रखेगा, यहाँ तक कि ऐसे मामले में भी जहाँ न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि मध्यस्थ अधिकरण द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से भिन्न दृष्टिकोण संभव है, बशर्ते मध्यस्थ अधिकरण द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण उचित दृष्टिकोण हो। धारा 34 के तहत आपत्तियों पर विचार करने वाले न्यायालय को तथ्य संबंधी निष्कर्ष निकालने के प्रयोजनार्थ साक्ष्य का मूल्यांकन या पुनर्मूल्यांकन नहीं करना है। मध्यस्थ अधिकरण द्वारा तथ्य संबंधी निष्कर्षों में तब तक हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि वे अभिलेख को देखते ही विकृत या त्रुटिपूर्ण न लगे। वर्तमान मामले में ऐसी कोई विकृति या त्रुटि उल्लिखित नहीं की गई है। मध्यस्थ अधिकरण का यह निष्कर्ष कि समझौता अरजिस्ट्रीकृत है और उस पर अपर्याप्त स्टाम्प लगा हुआ है, इसलिए साक्ष्य में अस्वीकार्य है और इसके अलावा उक्त समझौते का कोई भी खंड लागू नहीं किया जा सकता है, ये निष्कर्ष सुस्थापित न्यायिक सिद्धांतों के अनुसार हैं।

23. भारत के उच्चतम न्यायालय ने **मैकडरमॉट इंटरनेशनल इंक बनाम बर्न स्टैंडर्ड कंपनी लिमिटेड: 2006 (11) एस.सी.सी. 181** के मामले में निम्नानुसार निर्धारित किया है:

"35. 1996 के अधिनियम में न्यायालयों की पर्यवेक्षी भूमिका, निष्पक्षता सुनिश्चित करने के लिए मध्यस्थ अधिनिर्णय की समीक्षा के लिए प्रावधान किया गया है। न्यायालय के हस्तक्षेप की परिकल्पना केवल कुछ परिस्थितियों में की गई है, जैसे मध्यस्थों द्वारा धोखाधड़ी या पक्षपात, नैसर्गिक न्याय का उल्लंघन आदि। न्यायालय मध्यस्थों की त्रुटियों को ठीक नहीं कर सकता। यह केवल अधिनिर्णय को अभिखंडित कर सकता है, जिससे पक्षकारगण को यदि चाहें तो पुनः मध्यस्थता शुरू करने की स्वतंत्रता मिल जाती है। इसलिए, प्रावधान का स्कीम न्यायालय की पर्यवेक्षी भूमिका को न्यूनतम स्तर पर रखने का लक्ष्य रखती है और इसे उचित ठहराया जा सकता है क्योंकि समझौते के पक्षकारगण मध्यस्थता का विकल्प चुनकर न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को बाहर करने का सचेत निर्णय लेते हैं क्योंकि वे इसके द्वारा दी जाने वाली सुविधा और अंतिमता को पसंद करते हैं।

24. भारत के उच्चतम न्यायालय ने ओएनजीसी लिमिटेड बनाम सॉ पाइप्स लिमिटेड (2003) 5 एस.सी.सी. 705 के मामले में निम्नानुसार निर्धारित किए हैं:

"54. यह सच है कि यदि मध्यस्थ अधिकरण ने न्यायनिर्णयन के लिए प्रस्तुत विवादित प्रश्न पर अपने निष्कर्ष पर पहुँचने में केवल तथ्य या विधि की त्रुटि की है, तो न्यायालय के पास अधिनिर्णय में हस्तक्षेप करने के लिए कोई अधिकार क्षेत्र नहीं होगा। लेकिन यह मध्यस्थ को दिए

गए संदर्भ पर निर्भर करेगा: (क) यदि पक्षकारगण के बीच संविदात्मक विवाद को तय करने के लिए एक सामान्य संदर्भ है और यदि अधिनिर्णय गलत विधिक प्रतिपादना पर आधारित है, तो न्यायालय हस्तक्षेप कर सकता है; (ख) यह भी सुस्थापित विधि है कि तर्कपूर्ण अधिनिर्णय के मामले में, न्यायालय उसे अपास्त कर सकता है यदि यह प्रत्यक्षतः विधि के प्रतिपादना या उसके अनुप्रयोग में त्रुटि हो; और (ग) यदि मध्यस्थ के समक्ष विधि का कोई विशिष्ट प्रश्न प्रस्तुत किया जाता है, तो विधि की दृष्टि से त्रुटिपूर्ण निर्णय अधिनिर्णय को दोषपूर्ण नहीं बनाता है, ताकि इसे अपास्त करने की अनुमति दी जा सके, जब तक कि न्यायालय संतुष्ट न हो कि मध्यस्थ ने अवैध रूप से कार्यवाही की है।

25. भारत के उच्चतम न्यायालय ने **महाराष्ट्र राज्य विद्युत बोर्ड बनाम स्टरलाइट इंडस्ट्रीज (भारत) 2001 (8) एस.सी.सी. 482** के मामले में निम्नानुसार निर्धारित किए हैं:

“9. इस न्यायालय ने *भारत संघ बनाम ए.एल. रलिया राम* [ए.आई.आर. 1963 एस.सी. 1685 : (1964) 3 एस.सी.आर. 164] और *मदनलाल रोशनलाल महाजन बनाम हुकुमचंद मिल्स लिमिटेड* [ए.आई.आर. 1967 एस.सी. 1030 : (1967) 1 एस.सी.आर. 105] में विधि की स्थिति पर ध्यान दिया है, जिसमें कहा गया है कि तथ्यों और विधि दोनों के आधार पर मध्यस्थ का निर्णय अंतिम है; उसके निर्णय के विरुद्ध कोई अपील नहीं की जा सकती है; न्यायालय उसके निर्णय की समीक्षा नहीं कर सकता है और

उसके न्यायनिर्णयन में किसी त्रुटि को ठीक नहीं कर सकता है, जब तक कि निर्णय की वैधता पर आपत्ति प्रत्यक्षतः स्पष्ट न हो। यह समझने के लिए कि अधिनिर्णय में प्रत्यक्षतः विधि की त्रुटि क्या होगी, *चैंपसी भारा एंड कंपनी बनाम जीवराज बल्लू स्पिनिंग एंड वीविंग कंपनी लिमिटेड* [(1922-23) 50 आई.ए. 324 : ए.आई.आर. 1923 पी.सी. 66], प्रिवी काउंसिल के निर्णय में निम्नलिखित टिप्पणियां प्रासंगिक हैं (आई.ए. के पृष्ठ 331 पर)

‘माननीय न्यायाधीशों के विचार में अधिनिर्णय में प्रत्यक्षतः विधि के त्रुटि का अर्थ है कि आप अधिनिर्णय में या उसमें संलग्न किसी दस्तावेज में, उदाहरणार्थ मध्यस्थ द्वारा अपने निर्णय के कारणों को बताते हुए संलग्न किया गया नोट, कोई विधिक प्रतिपादना पा सकते हैं जो निर्णय का आधार है और जिसे आप त्रुटिपूर्ण कह सकते हैं।’

10. *एरोसन एंटरप्राइजेज लिमिटेड बनाम भारत संघ* [(1999) 9 एस.सी.सी. 449] में इस न्यायालय ने इस मामले की पुनः जांच की और कहा कि जहां तथ्यान्वेषण की त्रुटि अधिनिर्णय पर असर डालती है, वहां स्पष्ट है और विभिन्न संभावित दृष्टिकोणों को ध्यान से मूल्यांकन करने की आवश्यकता के बिना आसानी से साबित की जा सकती है, गलत तथ्य संबंधी निष्कर्ष के आधार पर अधिनिर्णय में हस्तक्षेप अनुमेय है और इसी तरह, यदि अधिनिर्णय विधि के ऐसे सिद्धांत को लागू करने पर आधारित है जो स्पष्ट रूप से गलत है, और विधि के सिद्धांत के ऐसे गलत अनुप्रयोग के बिना अधिनिर्णय

नहीं दिया जा सकता था, तो ऐसा अधिनिर्णय यह अभिनिर्धारित करते हुए अपास्त किया जा सकता है कि मध्यस्थ की ओर से विधिक अवचार हुआ है।”

26. मध्यस्थ अधिकरण ने यह निष्कर्ष निकाला है और यह सही भी है कि चूंकि पट्टा समझौता अरजिस्ट्रीकृत था और उस पर अपर्याप्त मुहर लगी थी, इसलिए समयबंदी निर्धारित करने वाला खंड लागू नहीं किया जा सकता। याचीगण को उचित रूप से असमाप्त समयबंदी के लिए किसी भी राशि की मांग करने का हकदार नहीं माना गया था। मध्यस्थ अधिकरण द्वारा दिए गए इस निष्कर्ष के संबंध में कि परिसर 01.04.2009 से खाली कर दिया गया था, निष्कर्ष तथ्यात्मक हैं और अभिलेख पर प्रत्यक्षतः कोई त्रुटि नहीं है। वे विकृत नहीं हैं और उनमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता।
27. उपरोक्त के मद्देनजर, मुझे याचिकाओं में कोई गुणागुण नहीं दिखता है। तदनुसार याचिकाएं खारिज की जाती हैं। कोई जुर्माना नहीं।

न्या. संजीव सचदेवा

मार्च 13, 2014

एस.टी.

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा। समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।